भक्ति साधना के सोपान

कुछ मूलभूत बातें

हर व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्रता या मुक्ति चाहता है जिसे शास्त्रों में मोक्ष कहते हैं। समस्त बंधनों से मुक्ति- क्योंकि बंधन ही दुख है और मुक्ति ही सुख।

मुक्ति या आनन्द के लक्ष्य की ओर कदम बढाना है तो सर्वप्रथम कुछ मूलभूत बातों को जानना जरूरी है। सबसे पहले तो हम यह देखें कि मुक्ति कहते किसे हैं। साधारणतः जब हम जो जी चाहे करने को स्वतन्त्र होते हैं तो हमें मुक्तिबोध होता है, लेकिन सावधान- ऐसे में आत्मनिरीक्षण करें- आप पाएंगे कि आपके मन ने आपको बुरी तरह जकड रखा है। उसकी इच्छा से जरा भी टस से मस हुए नहीं कि वह आपको बुरी तरह दुखी कर मारेगा और जितना अधिक उसको खुश करने की कोशिश करेंगे उतनी ही उसकी मांग बढती जाएगी। इस प्रकार तो कोई भी सास या कोई भी बॉस नहीं जकडता। इस बात को जब तक आप स्वयं आत्मनिरीक्षण कर के नहीं समझेंगे, दूसरों के बताने से कुछ नहीं होगा। अच्छी तरह समझ लें- ***जो जी चाहे वह न करके भी खुश रहना ही वास्तविक मुक्ति है।***

मुक्ति क्या है, यानि हमारा मुकाम क्या है यह समझ लेने के बाद यह निश्चय करना होगा कि हमें इस लक्ष्य को पाना ही है। जब तक संकल्प दृढ न हो तब तक जीवन के रण को जीता नहीं जा सकता। अब तक तो हम दूसरों को जीतने की, उन्हें वश में करने की, उन्हें नीचा दिखाने की ही कोशिश करते आए थे, अब हमने समझा है कि हमारा सबसे बडा शत्रु हमारा मन है। सबसे बडा बंधन हमारे मन का बंधन है, इससे छूटना आवश्यक है। ***हमें स्वयं को बदलना होगा।*** आत्म शुद्धि को लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठापित करें। आज के बाद से हम जो कुछ भी करते हैं, हमारे सामने उसका उद्देश्य स्पष्ट रहे- आत्मशुद्धि। जो कुछ जप, पूजा, पाठ, दान आदि भी करते हैं तो इस संकल्प के साथ करें- मैं यह सब अपनी आत्मशुद्धि के लिए कर रहा हूं। यकीन मानिए- ***दूसरी कोई भी उपलब्धि- धन, यश, मान, बड़ाई इससे ऊंची और इससे लाभदायक नहीं है।***

मन का मुख्य बंधन - आसक्ति

कोई अन्त नहीं है मन की चालों का। हमारा यह शत्रु हमें बहकाने की अनगिनत चालें जानता है। लेकिन हमने तो लक्ष्य बनाया है इसे परास्त करने का। तो सबसे पहले तो अपने दुश्मन के ठिकानों को और उसकी चालों को समझना होगा तब हम अपनी रणनीति ठीक ठीक तय कर पाएंगे। मन के स्वभाव के बारे में गीता कहती है कि मन ही हमारा शत्रु है और मन ही हमारा मित्र। विचित्र शत्रु है यह जो जीत लिए जाने पर बदले की आग में धधकता नहीं वरन् हमारा सबसे बडा मित्र बन जाता है। अब तो इसे जीतने का हमारा संकल्प और भी दृढ हो जाना चाहिए क्योंकि वही शत्रु सबसे खतरनाक हाता है जो हर दम सर पर सवार रहे और उस मित्र का कहना क्या जो हरदम हमारे साथ रहे! ऐसा ही है हमारा मन।

हमें बांधने की अनेक डोरियां है मन के पास। सबसे गहरी जान पहचान तो है हमारी कामना से। फिर अहंकार, क्रोध, लोभ, मोह, और न जाने क्या क्या। सबको सूक्ष्मता से देखें, परखें, पहचान करें। आप पाएंगे कि ***सब के मूल में है आसक्ति।*** जिस वस्तु के प्रति आसक्ति होती है उसी की कामना होती है। जिस व्यक्ति के प्रति आसक्ति होती है उसी की सुरक्षा के लिए मन व्याकुल रहता है, उसी को अपनी उंगलियों पर नचाना भी चाहता है और उसी को खुश देखने के लिए तरह तरह के हथकंडे भी अपनाता है। आप बेचारे मन के जाल में फंसे छटपटाते रहते हैं और यह समझ भी नहीं पाते कि यह जाल है। यही आसक्ति जब बढ जाती है तो लोभ का रूप ले लेती है और इसकी मांगें पूरी नहीं हुई तो हमें क्रोध से पागल बना डालती है। हाई ब्लड प्रेशर, सर दर्द, टेंशन, हाइपर टेंशन, डिप्रेशन, हार्ट अटैक, अल्सर- इन सबकी फौज है इसके पास और हमारे पास? दवा की गोलियों के सिवा कुछ भी नहीं! क्या इसी के लिए हमने जन्म लिया है!!

आसक्ति से छूटने के उपाय

शत्रु के पास अनेकों प्रकार की चालें हैं तो हम भला क्यों पीछे रहेंगे! हमारे शास्त्रों ने भी तरह तरह के उपाय बताए हैं- निष्काम कर्म, दान, तप, यज्ञ, अपने आत्म स्वरूप का चिन्तन, मनन, ज्ञान, ध्यान इत्यादि। हमें सारे हथियार चलाने सीखने होंगे लेकिन यहां हम विस्तार से उस चाल को सीखने का प्रयत्न करेंगे जिसे चलना सबसे आसान है और जिसके

लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता भी नही होती। यह है भक्ति की साधना। आइये हम इसके एक एक सोपान को समझने का प्रयास करें।

भक्ति गंगा है तो गंगोत्री है ज्ञान- ***सब कुछ प्रभु का है यह जानना***- अच्छी तरह जानना। इस संसार में हमारा मन ही कम्बख्त अपना नहीं तो दूसरा कौन होगा? और हम आए भी क्या लेकर थे कि दावा करें कि यह हमारा है। सब कुछ प्रभु का है और उसकी इच्छानुसार चल रहा है। हमें भले लगता हो कि यह सब गलत हो रहा है लेकिन हमारी बुद्धि सीमित है, हमारा ज्ञान अधूरा है और हमारा दृष्टिकोण संकुचित। हम यह भी नहीं बता सकते कि हमारा अपना ही मन अगले ही क्षण क्या सोचेगा जब कि प्रभु को भूत, वर्तमान, भविष्य सब पता है। हम उससे अधिक समझदार होने का दावा नहीं कर सकते। भगवान की रचना और व्यवस्था में दोष देखने के बजाय उसे खुशी खुशी स्वीकार करना सीखें।

संसार, समाज और अपने परिवार की आलोचना और शिकायत करते रहने के बदले यह दृष्टिकोण रखें कि यह संसार मेरा नहीं है, ठाकुर जी का है। मैं भी ठाकुर जी का हूं और उन्होंने बडे प्रेम से मुझे इसे सौंपा है, जैसे हम अपने सबसे प्यारे, सबसे समझदार पुत्र को कोई बहुमूल्य वस्तु सौंपते हैं। क्या हम उनके साथ विश्वासघात करेंगे? नहीं! ***हमें उनकी कसौटी पर खरा उतरना ही है। हम अच्छी तरह संसार को सहेजेंगे- लेकिन उनका मान कर, अपना नहीं।*** तब संसार के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह अब से कहीं ज्यादा अच्छा होगा और आसक्ति के बंधन भी कटते जाएंगे।

प्रभु से प्रेम

अपनी वर्तमान अवस्था में हम पाते हैं कि जिनके प्रति हमारी ममता और आसक्ति है उनके लिए तो हम खुशी खुशी, बडे बडे कष्ट सह कर भी अपने दायित्वों का निर्वाह कर लेते हैं। लेकिन जिनसे हमें प्रेम नहीं या जिन्हें हम पसन्द नहीं करते उनके लिए तो एक तिनका तक उठाना हमें महान बंधनकारी मालूम देता है और हम शीघ्रातिशीघ्र उस स्थिति से मुक्त होना चाहते हैं। अभी तो संसार में कुछ अपने लगते हैं, कुछ पराए। इसलिए हम उनके लिए कुछ करते या न करते हुए बन्धन-मुक्ति अथवा सुख-दुख के झूले में झूलते रहते हैं। यदि पूरे संसार को ही अपना नहीं माना, पराया मान लिया तो जीवन में रस क्या रह जाएगा?

अपना सारा रस, सारा प्रेम प्रभु की ओर मोड़ दें। संसार प्रभु का है और प्रभु हमारे बडे प्यारे और अपने हैं तो पराएपन का भाव रह कहां जाएगा? हॉस्टल में रहते बच्चे की मां उसके एक एक खिलौने को बहुत प्रेम से सहेज सहेज कर रखती है क्योंकि बेटा कह गया था- मां यह

खिलौना मुझे बहुत प्रिय है, इसे ठीक से उठा कर रख देना, यह टूट न जाए। खिलौना बेटे का है और बेटा हमारा- बडा प्यारा। इसीलिए वे खिलौने बडे प्यारे लगते हैं, उन्हें देखने से ही बेटे की याद आती है।

संसार मेरा नहीं प्रभु का है और प्रभु मेरे बडे प्यारे हैं। यदि उनके प्रति प्रेम दृढ हो जाएगा तो संसार, अपने परिवार, पति-पत्नी, बच्चे, माता-पिता, सबके साथ प्रेम का व्यवहार होगा क्योंकि ये सब मेरे प्यारे ठाकुर जी के हैं। उन्होंने दिए हैं मुझे संभालने को। तब तन संसार में रहते हुए भी मन प्रभु में होगा।

प्रेम कैसे हो

प्रभु के प्रति उत्कट, निश्छल, प्रगाढ प्रेम हमारे सभी बंधनों को काट कर हमें मुक्त कर देगा। यह समझने के बाद अगला प्रश्न उठता है कि प्रेम हो कैसे? समझ जाने के बाद भी तो प्रेम में लेश मात्र भी वृद्धि होती दिखाई नहीं देती। हम करें क्या?

जरा ध्यान दें। अपनी सगाई के दो दिन पहले तक जिससे जान पहचान तक नहीं, सगाई होते ही लडकी को वह संसार में सबसे ज्यादा प्यारा लगने लगता है- वर्षों से जिन माता पिता ने पाला पोसा, उनसे भी अधिक। इसका कारण यह है कि समाज की व्यवस्था और माता पिता की सीख ने उसके मन में यह संस्कार गहरे जमा दिए हैं कि सब कुछ पति ही है। वही सबसे ज्यादा अपना है। इन्हीं संस्कारों के कारण उसे उस नए लडके से प्रेम हो जाता है और उसी प्रेम के बल पर वह ससुराल आकर सास, ससुर, देवर, ननद सभी की सेवा कर पाती है और उन्हें खुश रखने का प्रयत्न कर पाती है।

हमारे मन में ये संस्कार किसी ने जमाए नहीं कि भगवान ही हमारे सब कुछ हैं, वे ही हमारे सुख दुख के सच्चे साथी हैं, वे ही हमारे सबसे बडे हितैषी हैं और वे तब भी साथ देंगे जब यह संसार तो क्या हमारा शरीर भी साथ छोड देगा। ***अब मन को इस प्रकार संस्कारित करने का काम हमें स्वयं करना होगा।***

संस्कारित करने का सबसे बड़ा साधन है सत्संग। सत्संग ही हमारे मन के कपाट खोलता है जिससे मुरलीमनोहर वनमाली उसमें प्रवेश कर सके। भगवान की लीलाओं का पठन-पाठन, श्रवण, कीर्तन, गायन करें। उनकी लीलाएं हैं ही इतनी मनोहारी कि मन को सहज ही आकर्षित कर लेती हैं। जब वे कहते हैं कि मैं एक बार किसी का हाथ पकड लेता हूं तो छोडता नहीं, जब वे कहते हैं कि तीनों लोकों का अधिपति होते हुए भी मैं अपने भक्त के पराधीन हूं, जब

आप उन्हें छछिया भर छाछ पर नाचते हुए देखेंगे, जब भक्त के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोडते देखेंगे, वन वन भटकते देखेंगे, जूठे शाक का पत्ता खाते देखेंगे- रह पाएंगे उन्हें प्रेम किए बिना?

एक बार, बस एक बार अपने मन की धारा को संसार से हटा कर उसकी ओर मोड कर देखिए। विश्वास कीजिए। प्रेम करने की कला में उससे अधिक माहिर दूसरा कोई नहीं। अपना सम्पूर्ण मैं, अपना पूरा कपट त्याग कर प्रेम से उसके पास बैठिए। यदि एक क्षण को भी आपकी सम्पूर्ण चेतना उसकी ओर उन्मुख हो पाई, एक पल के लिए भी संसार के बदले कन्हाई, केवल कन्हाई आप के मन में आ गया- आप एक अद्‌भुत रस का आस्वादन करेंगे। आपने जेठ की तपती लू के बाद बरसी वर्षा की पहली फुहार की शीतलता का आनन्द लिया होगा। यकीन मानिए, इससे कहीं अधिक ठंडी और मीठी है कन्हैया के प्रेम के फुहार जो तब बरसती है जब आपका दिल उसके लिए धडकता है। उसे ऐसा प्रेम करना आता है जैसा संसार के कोई व्यक्ति नहीं कर सकते- क्योंकि वे तो कंगाल हैं- स्वयं ही प्रेम के कतरे बटोरने में मरे जा रहे हैं। जो प्रेम का अथाह सागर है उसके पास तनिक जा कर तो देखिए। उनसे कोई भी एक नाता जोड़ लीजिए। वे आपके गुरु भी बनने तैयार हैं, माता भी, पिता भी, सखा भी, स्वामी भी और नन्हें मुन्ने बालक भी।

जिससे प्रेम करते हैं.....

अभी अभी बात यह उठी कि संसार के सभी प्राणी प्रेम के मामले में कंगाल हैं, वे उस प्रकार प्रेम कर ही नहीं सकते जैसे भगवान करते हैं। हम भी उन्हीं में से एक हैं। हम भला उनसे क्या प्रेम करेंगे? बात तो तब बने जब वे हमसे प्रेम करने लग जाएं- बन्धन तो तभी दृढ होगा। हम दुनियावाले तो प्रेम करना नहीं सिर्फ चालें चलना जानते हैं। हम सोचते रहते हैं कि हम क्या करें कि अमुक आदमी के प्रेम पात्र बन जाएं। इसी के लिए खुशामद, चापलूसी आदि का इस्तेमाल करते हैं। ये सब हथकंडे संसार में बडे काम आते हैं और हम इन्हीं के बल पर भगवान को भी जीतना चाहते हैं। भगवान हमारे गाए भजन सुनते जरूर हैं लेकिन उन पर कोई असर नहीं होता। ये सब तो अपने ही मन को सुनाने के लिए हैं-'रे मन तूं अच्छी तरह समझ ले कि वे दीनबंधु हैं। तूं उनकी शरण में जा।' भगवान ने बारहंवे अध्याय में स्पष्ट बताया है कि वे किसे प्रेम करते हैं।

उनका कहना है कि जो सुख में उछलता नहीं, दुख में कलपता नहीं, दूसरों को दुखी करता नहीं, अपने दुख के लिए दूसरों को जिम्मेदार ठहराता नहीं, जो भी मिले उसमें संतोष धारण

कर प्रसन्न रहता है और संसार के प्रति ममता-आसक्ति नहीं वरन् मैत्री और कल्याण का भाव रखता है, जो किसी भी कार्य को करते समय यह नहीं सोचता कि 'यह मैंने किया' और जो निंदा स्तुति में सम रहता है ऐसा स्थिर मति वाला भक्त मुझे प्रिय है।

यह सब पढ कर घबराइये नहीं कि मुझमें तो इनमें से कोई गुण नहीं, मैं कैसे बनूंगा भगवान का प्रेम पात्र! देखिए भगवान ने प्रिय भक्तों के बारे में बताने के बाद अंत में क्या कहा है- **'जो इन सबके बारे में जान कर इन्हें धारण करने के लिए बहुत प्रयत्न करता है वह मेरा भक्त मुझे <u>अतिप्रिय</u> है।'** यानि आपके चाहने भर की देर है आप प्रिय तो क्या सीधे अतिप्रिय की श्रेणी में पहुंच सकते हैं।

अपने दैनिक व्यवहार में इन गुणों के अनुकूल व्यवहार करने का यथाशक्ति प्रयत्न करें। फिर भी लगे कि कुछ नहीं हो रहा है तो घबराएं नहीं। वह स्वयं आपकी चिंता करेगा लेकिन अपनी ओर से प्रयत्न में कभी कमी नहीं रखें।

भगवान से प्रेम भी करें और उनके प्यारे बनने का प्रयत्न भी करें। प्रेम की खूबसूरती तो इसीमें है कि 'दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई।' तब आप उनकी ओर दौडेंगे और वे आपकी ओर। और यह दौड भी कैसी होगी! जैसे चींटी और हाथी। चींटी हाथी की ओर दस कदम दौड़े और हाथी चींटी की ओर दस कदम दौड़े- दोनों के मिलन में चींटी का योगदान कितना रहा?

प्रीत की रीत

प्रेम जगत के अपने कायदे कानून होते हैं। दो प्रेमी आपस में वैसा व्यवहार नहीं करते जैसा कि दो साधारण मित्र करते हैं। प्रभु से प्रेम करना है तो हमें देखना होगा कि उनके प्रति हमारा व्यवहार कैसा हो।

सबसे पहली बात तो दृढता से यह धारण करना है कि प्रभु मेरे, मैं प्रभु का। इसमें भी 'मैं प्रभु का' भाव ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि जब हम सोचेंगे 'प्रभु मेरे' तो शायद मन में यह भाव आ जाए कि हम अपनी इच्छानुसार उनसे काम करवा सकते हैं। लेकिन 'मैं प्रभु का' में पूर्ण समर्पण है। इसमें स्वामित्व उनका है इसलिए हमें तो केवल उन्हें प्रसन्न रखना है। वे जैसे नचाएं वैसे नाचना है। वह सेवक कैसा जो स्वामी से कहे- 'हम आपके बडे सेवक हैं, हमारे लिए एक गिलास पानी लाना।'

कोई दयालु स्वामी भी अपने सेवक का अहित नहीं चाह सकता, कोई माता पिता अपने बच्चों का अहित नहीं चाह सकते और कोई प्रेमी अपने प्रिय का अहित नहीं कर सकता। भगवान

तो हमारे स्वामी भी हैं, माता पिता भी और प्रेमी भी, और साथ ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान। साधारण स्वामी या प्रेमी तो कभी अज्ञानता या कभी असमर्थता के कारण शायद कुछ गलत कर भी बैठे लेकिन सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान प्रभु हमारे प्रतिकूल भला कुछ कर ही कैसे सकते हैं! हमें आज यदि अपनी परिस्थितियां प्रतिकूल लग रही है तो इसमें जरूर भगवान का कोई विशेष प्रयोजन है। प्रतिकूलता मात्र हमारा भ्रम है।

भगवान की अनुकूलता हर प्राणी पर हर क्षण बरसती है लेकिन हमारी दृष्टि उस पर जाती नहीं। उसकी कृपा के दर्शन का अभ्यास करना होगा। उसकी कृपा के दर्शन का अभ्यास हो जाए तो फिर मौज ही मौज है। किंतु प्रारम्भ में इसके लिए प्रयत्न करना होगा। उदाहरणस्वरूप आपका मित्र आपसे धोखेबाजी करे तो यह समझने का प्रयास करें कि मैं उसकी आसक्ति में बहुत फंस रहा था, भगवान ने चेता दिया कि सांसारिक व्यक्तियों के प्रति आसक्ति रखना ठीक नहीं।

एक गुल्लक बना लें। हर बार जब उसकी कृपा का दर्शन हो, उसमें एक सिक्का डालें। लालची बच्चे की भांति उसे जल्दी से जल्दी भरने का प्रयास करें। आपको पता भी नहीं चलेगा कि पिछले अध्याय में भगवान के द्वारा बताए गए गुण कैसे आपमें सहज ही आते जा रहे हैं और आप उसके प्यारे बनते जा रहे हैं। **आप ऐसा जरूर कर के देखें।**

प्रीत की रीत के विषय में पूज्य स्वामी अखंडानन्दजी कहा करते थे- भगवान से हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए जैसा पतिव्रता स्त्री का अपने पति के साथ होता है। वह सेवा पति की करती है और अपनी जरूरत की वस्तुओं के लिए भी वह उसी पर आश्रित रहती है। पति की सेवा कर पडोसी से साडी मांगने वाली स्त्री को पतिव्रता कहेंगे आप? हमें भी खुश करना है तो उसीको, मांगना है तो उसीसे और रोना भी है तो उसीके चरणों में। ***'जीवन में सबसे महत्व की वस्तु हमारे कन्हैयालाल हैं, बस,'*** साधारण से लगने वाले इस वाक्य में मुक्ति की कितनी बडी कुंजी छुपी हुई है इसका पता आपको तभी चलेगा जब आप स्वयं इस वाक्य को हृदय में धारण करेंगे।

लगे हाथों संसार के प्रति अपने व्यवहार के विषय में भी स्वामीजी की सलाह जान लें। वे कहते थे कि संसार के प्रति हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए जैसा कुलटा औरत का अपने पति के साथ होता है। वह सेवा तो पति की करती है, उसे खुश भी रखती है किन्तु दिल अपने प्रेमी में लगाए रखती है।

संसार, हम और भगवान.....

हमारे रिश्तों का समीकरण बड़ा ही सीधा है। संसार को हमारे मन की कोई परवाह नहीं, हमारी भावनाओं की कोई इज्जत नहीं, उन्हें केवल हमारा तन चाहिए, हमसे मिलने वाला लाभ चाहिए। दूसरी ओर भगवान- उन्हें हमारे तन से कोई मतलब नहीं, आरती, दिया, बत्ती की भी कोई जरूरत नहीं, वे तो हमारा मन चाहते हैं बस। कितनी सीधी बात है- ***तन संसार में लगाए रखें और मन मुरलीमनोहर में।*** संसार भी खुश और भगवान भी खुश। फिर हमें जो खुशी मिलेगी उसका अंदाजा लगाना संभव नहीं है।

तो चलिए। आज तक आप संसार के स्वार्थी व्यवहार के लिए शिकायत कर रहे थे न, अब डालिए अपना पहला सिक्का गुल्लक में। यदि संसार स्वार्थी नहीं होता तो इस भव्य प्रेम प्रसाद में प्रवेश करते आप!

ॐ ॐ ॐ